|| श्रीहरिः ||
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

1/3 (श्लोक 1-10), शनिवार, 25 जनवरी 2025

विवेचक: गीता विशारद डॉ. संजय जी मालपाणी

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/SvqVxcmAfko

सनातन - परम तत्त्व का ज्ञान-विज्ञान

सुमधुर गीत, हनुमान चालीसा पाठ, दीप प्रज्वलन तथा गुरु वन्दना के साथ सत्र का आरम्भ हुआ।

आज हम यहाँ नवम् अध्याय का चिन्तन करने के लिये एकत्र हुए हैं। इस अध्याय का नाम ही बहुत अद्भुत है- **"राजविद्याराजगुह्ययोग"** अर्थात् "विद्याओं का राजा।" यदि विद्याओं के राजा के विषय में बात करनी है तो नवम् अध्याय को देखना पड़ेगा। श्रीमद्भगवद्गीता के मध्य अर्थात् नवम् अध्याय में "राजविद्याराजगुह्ययोग" है।

यदि हम देखें तो महाभारत के मध्य में श्रीमद्भगवद्गीता है और श्रीमद्भगवद्गीता के मध्य में यह महत्त्वपूर्ण अध्याय है।

महाराष्ट्र में पुणे के अत्यन्त निकट तीर्थक्षेत्र आलन्दी है, जहाँ गीता परिवार एवं महर्षि वेदव्यास प्रतिष्ठान का मुख्यालय वेदश्री तपोवन भी है। पूज्य स्वामीजी का निवास भी अब अधिकतर वहीं रहता है। आज से लगभग साढ़े सात सौ वर्ष पूर्व महाराष्ट्र में एक सन्त हुए, जिनका नाम सन्त ज्ञानेश्वर है। वहाँ उनकी सञ्जीवन समाधि है। सञ्जीवन समाधि का अर्थ है कि वे अभी भी जीवित हैं। जो भी श्रद्धालु वहाँ जाते हैं, उन्हें निश्चित रूप से इस प्रकार के अनुभव होते हैं। सन्त ज्ञानेश्वर महाराज ने अल्पायु में श्रीमद्भगवद्गीता का प्राकृत काव्य लिखा। प्राकृत का अर्थ होता है अत्यन्त सरल भाषा। उस समय जो मराठी भाषा बोली जाती थी, उन्होंने उस भाषा में श्रीमद्भगवद्गीता को अनुवादित किया तथा इस ग्रन्थ को "ज्ञानेश्वरी" (भावार्थ दीपिका) नाम से प्रकाशित किया गया। यह बहुत सुन्दर ग्रन्थ है। गीता प्रेस द्वारा इसका गद्य में अनुवाद किया गया है क्योंकि हिन्दी भाषा में उसे पद्य में प्रस्तुत करना अत्यन्त कठिन था। पूज्य स्वामी जी से अनेक बार इसका हिन्दी में पद्यानुवाद करने का अनुरोध किया गया है क्योंकि यह दुष्कर कार्य वे ही कर सकते हैं।

ज्ञानेश्वर महाराज की कथा स्वयं में एक विलक्षण कथा है। हमें यह जानना इसलिए आवश्यक है क्योंकि जब पूज्य स्वामीजी स्वयं मन्त्रदीक्षा देते हैं तो वे कहते हैं कि "आपके गुरु सन्त ज्ञानेश्वर भगवान जी हैं।" स्वयं स्वामी गोविन्ददेव गिरि जी महाराज भी सन्त ज्ञानेश्वर महाराज के बहुत बड़े भक्त हैं तथा उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

जब ज्ञानेश्वर महाराज समाधिस्थ हुए, तब उनके श्रीमुख से नवम् अध्याय के श्लोक चल रहे थे। हम इसी बात से नवम् अध्याय के महत्त्व का अनुमान लगा सकते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता योग का ग्रन्थ है तथा योग का अन्त समाधि है। यम-नियम का पालन करते-करते जब हम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान करते हैं तब उसकी अन्तिम परिणति समाधि होती है। उस समाधि अवस्था में निरन्तर बने रहने के लिये जब ज्ञानेश्वर महाराज ने समाधि में प्रवेश किया, तब वे नवम् अध्याय बोल रहे हैं। वास्तव में हम कुछ चीजों को शब्दों में नहीं बाँध

सकते। हम इनका मात्र अनुभव कर सकते हैं।

उदाहरण के लिये यदि आपसे कोई पूछे कि "क्या आपने शक्कर खायी है? आप मीठा स्वाद जानते हैं?" यदि आपने कभी शक्कर नहीं खायी है तो आप कहेंगे कि "नहीं! मैं नहीं जानता हूँ।" यदि शक्कर के स्वाद को शब्दों में बाँध कर कहना हो तो हमारे लिए कठिन होगा। हम उसका स्वरूप बता सकते हैं। मिठास बताने के लिए हमें उसका अनुभव ही करना पड़ेगा। किसी को उसका स्वाद चखाना हो तो उसे शक्कर खिलानी पड़ेगी।

इसी प्रकार राजविद्या नामक गुह्यतम शास्त्र भी केवल अनुभव से जाना जा सकता है। यदि कहने वाले श्रीभगवान् हैं तो उनके लिये तो कुछ असम्भव नहीं है। इसीलिए श्रीभगवान् ने इसे शब्दों में बाँधा है। यद्यपि शब्दों में बाँधने वाले श्रीभगवान् हैं, किन्तु अनुभव हमें स्वयं ही करना पड़ेगा। इसे समझने के लिये हमें साधना की आवश्यकता पड़ेगी।

हम पढ़ते हैं कि मृत्यु के पश्चात हमें स्वर्गलोक प्राप्त होगा, श्रीभगवान् प्राप्त होंगे, कैलाश लोक प्राप्त होगा, पितृलोक प्राप्त होगा किन्तु इसका अनुभव हमें बिना मृत्यु को प्राप्त किये नहीं होगा। इस मृत्यु लोक में सर्वव्याप्त परमात्मा का अस्तित्व अनुभव करने की विधा जानने के लिये हमें नवम् अध्याय का ही आश्रय लेना पड़ेगा। इसीलिए यह अध्याय बहुत अद्भुत है। वेद और कर्मकाण्ड जानना कठिन है क्योंकि चार वेद हैं और अनेक ऋचाएँ हैं। हम संसार में रहने वाले मनुष्य हैं। हमारे पास न तो वेद पढ़ने का समय है और न ही अधिकार। ऐसे में यदि समस्त वेदों का सङ्क्षेप में अर्थ जानना है तो वह अर्थ इसी अध्याय में ज्ञात होगा।

मान लीजिए कि हम जङ्गल-मार्ग से जा रहे हैं और हमें बहुत अधिक भूख तथा प्यास लगी है। उस समय यदि अचानक हमें आम का वृक्ष दिखायी दे और उस पर रसीले आम लगे हों, तो जो प्रसन्नता होगी, वही प्रसन्नता यह अध्याय पढ़ने के पश्चात होती है। जिसे ब्रह्म का अस्तित्व जानना है, उसके लिये यह अध्याय उसी आम के वृक्ष के समान होगा जो घने जङ्गल में भूख-प्यास से व्याकुल पथिक को दिखायी दे जाए। अब यदि उस वृक्ष पर बहुत ऊँचाई पर आम लगे हैं जिन्हें तोड़ पाना उसके लिये कठिन हो, उसी समय कोई व्यक्ति उसके लिये आमरस लेकर आ जाये, तब आनन्द की जो अनुभूति होगी, वैसी अनुभूति यह अध्याय पढ़ने से होती है। इसके लिये हमें थोड़ा सा उसमें उतरना पड़ेगा। वास्तव में हम उतरने के लिये तैयार नहीं होते हैं। **उतरने का अर्थ होता है शून्य हो जाना।**

हिमालय की ऊँचाई मीटर में मापी जाती है। इसमें शून्य समुद्र के तल पर होता है। शून्य होना ही उतरना होता है। हम ऊँचाई पर ही बैठते हैं। हम धन, विद्या, पद, प्रसिद्धि से प्राप्त अपनी छोटी-छोटी प्रतिष्ठा के अहङ्कार में ऊँचाई पर जाकर बैठ जाते हैं और नीचे उतरना नहीं चाहते हैं।

कोई किसी छोटे से बैंक का निदेशक बनता है तो उसके लिये अनेक उद्यम करता है, अनेक व्यक्तियों से उसका वैर हो जाता है। हम इसी में अपने अहम् भाव को प्रतिष्ठित करते रहते हैं। हम यदि पर्वत की ऊँचाई से अपनी मूल्यवान मर्सिडीज़ कार को देखेंगे तो वह बिलकुल छोटी सी दिखेगी। जिस मर्सिडीज़ कार का हम इतना अधिक अहङ्कार कर रहे थे, समस्त संसार में उसका अस्तित्व नगण्य है। यह अहङ्कार ही हमारा विनाश कर देता है। जिस क्षण हमें अपने अस्तित्व का भान हो जाता है, उस क्षण हम स्वयं को शून्य बनाना आरम्भ करते हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा लिखित श्रीरामचरितमानस में वर्णन है कि सुरसा ने जब अपना मुँह खोला तब श्रीहनुमान जी ने अपना कद बढ़ा लिया। जैसे-जैसे सुरसा मुँह बड़ा करती, श्रीहनुमान जी अपना कद बढ़ाते जाते और अचानक उन्होंने तत्काल अतिलघु रूप धारण कर लिया। यह अतिलघु रूप ही शून्य बनना होता है। जो अहङ्कार से शून्य हो जाए, वही इसका स्वाद चख सकता है। इसीलिए हमें इस अध्याय को समझने से पूर्व अपने अहङ्कार का विसर्जन करना होगा। विद्या से ज्ञान होता है और यही ज्ञान देने वाला यह अति सुन्दर अध्याय है।

श्रीमद्भगवद्गीता वेदों का सार है-

सर्वोपनिषदो गावो, दोग्धा गोपाल नन्दनः।

पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता, दुग्धं गीतामृतं महत्।।

ये पङ्क्तियाँ श्रीमद्भगवद्गीता के आरम्भ में गीता माहात्म्य में कही गई हैं। वेदों का निचोड़ उपनिषद हैं। यहाँ उपनिषदों को गाय माना गया। उपनिषदों को भी निचोड़ कर उसका दुग्ध रूपी रस स्वयं श्रीभगवान् गोपाल द्वारा निकाला गया। श्रीभगवान् का नाम गोपाल है। वे गोपालन करते हैं। यहाँ पार्थ को बछड़ा अर्थात् वत्स कहा गया है।

बछड़े के दुग्ध-पान करने के उपरान्त जो दुग्ध बच जाता है, वह ग्वालों तथा गाय के रखवालों को मिलता है। यहाँ गीतामृत के लिए दुग्ध शब्द का प्रयोग किया गया है। श्रीमद्भगवद्गीता के अट्ठारह अध्याय तो दुग्ध हैं, इनमें से नवम् अध्याय ही गीतामृत है। जो इसे समझ लेगा, वह इस अमृत का अनुभव कर लेगा। जब हम गीता मैया को अपनाते हैं, तब इस गीतामृत का पान करने के अधिकारी बन जाते हैं। हम भी वत्स बन जाते हैं और अर्जुन की पङ्क्ति में आकर बैठ जाते हैं। यह गोरस हमारे लिए भी बन जाता है किन्तु हमें इसका अनुभव करना होगा।

श्रीभगवान् ने स्वयं जीवन-पर्यन्त इस भाव को जिया है। एक बहुत सुन्दर भजन है-

छोटी छोटी गैया, छोटे छोटे ग्वाल ।
छोटो सो मेरो मदन गोपाल ॥

जब गोपाल छोटे हैं तब वे छोटी-छोटी गैयों को प्यार कर रहे हैं, उनकी पूजा कर रहे हैं। उसी में श्रीभगवान् का स्वरूप मान रहे हैं। हमारी संस्कृति हमें सिखाती है कि वह परमेश्वर चराचर सृष्टि में व्याप्त है। श्रीभगवान् यमुनाजी को मैया कहते हैं, उसका पूजन करते हैं। गोवर्धन पर्वत का पूजन करते हैं। तुलसी जी से प्यार करते हैं।

महाभारत के युद्ध में बहुत सुन्दर वर्णन आता है कि श्रीभगवान् जब स्वयं अर्जुन का सारथ्य करने लगे, तब वे प्रतिदिन अर्जुन के घोड़ों के शरीर की धूल साफ कर रहे हैं तथा उनकी सेवा कर रहे हैं। वे उन घोड़ों को बहुत स्नेह दे रहे हैं। उनमें भी वे श्रीभगवान् का स्वरूप देख रहे हैं।

9.1

श्रीभगवानुवाच
इदं(न्) तु ते गुह्यतमं(म्), प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं(वँ) विज्ञानसहितं(यँ), यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥9.1॥

श्रीभगवान् बोले -- यह अत्यन्त गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान दोष दृष्टि रहित तेरे लिये तो (मैं फिर) अच्छी तरह से कहूँगा, जिसको जानकर (तू) अशुभ से अर्थात् जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त हो जायगा।

विवेचन- श्रीभगवान् द्वारा अर्जुन के लिए बहुत सुन्दर शब्द प्रयोग किया गया- **"दोष-दृष्टि रहित अर्जुन"**। श्रीभगवान् ने कहा कि "हे अर्जुन! तू दोष-दृष्टि रहित है।" हमारी दृष्टि में दोष रहता है। हमारे मन में अनेक प्रश्न उठते हैं, जैसे "यह लिखा है तो सही होगा क्या? श्रीभगवान् का मन्दिर है। क्या वास्तव में श्रीभगवान् मन्दिर में होते हैं? श्रीभगवान् का अस्तित्व है क्या? मैं जाऊँ और उन्हें प्रणाम करूँ तो वे मुझ पर प्रसन्न होंगे क्या? श्रीभगवान् वास्तव में भोजन करते हैं क्या?" श्रीभगवान् सूक्ष्म रूप से भोजन करते हैं। श्रीभगवान् भौतिक रूप से भोजन नहीं करते हैं। आपकी भाव-प्रधानता के आधार पर वे भोजन करते हैं।

आलन्दी में एक सन्त रहते थे। पिछली शताब्दी में वहाँ उनका आश्रम था। उन्होंने एक प्रयोग किया। प्रयोग यह था कि क्या मैं सूक्ष्म रूप से भोजन कर सकता हूँ? सूक्ष्म रूप से जल पी सकता हूँ? अनेक व्यक्तियों ने वे प्रयोग देखे। वे पूरे वर्ष सूक्ष्म रूप से जलपान करते रहे। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि तुम भी यह क्रिया कर सकते हो। इसका अभ्यास करना होगा। इसके लिए मैं प्रतिदिन तुम्हें केवल एक मूँगफली का दाना दूँगा। भोजन करने में जितना समय लगता है, तुम्हें उस दाने को उतने समय तक चबाना होगा। वही तुम्हारा भोजन बन जाएगा। पूरे दिन में मात्र एक दाना मिलेगा और तुम्हारा पेट भर जाएगा। उन्होंने अपने सारे शिष्यों को यह विद्या सिखायी। एक दाने को धीमे-धीमे चबाना है, निगलना नहीं है। उससे जो रस उत्पन्न होगा, वह पेट में जाएगा। आधे घण्टे तक मूँगफली का एक दाना चबा रहे हैं और पेट भर जाता है। दिन भर कुछ भी खाने की आवश्यकता नहीं होती है। दस व्यक्ति मिलकर एक गिलास पानी में पानी पी लेते हैं। पानी पीने की आवश्यकता नहीं पड़ती। योग ऐसा अद्भुत शास्त्र है। आप केवल देख रहे हैं और मन ही मन पी रहे हैं। पानी भी मन से पिया जा सकता है, भोजन भी मन से ग्रहण किया जा सकता है। यह सूक्ष्म रूप से होता है। इसी प्रकार पूजा भी मन से की जा सकती है। हमारा मन ही पूजा-साहित्य बन जाए, इसीलिए आदि शङ्कराचार्य जी ने मानस पूजा लिखी। मानस पूजा के अद्भुत मन्त्र हैं जो हमें पढ़ने चाहिए।

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं

नानारत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जातीचम्पकबिल्वपत्ररचितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥ 1 ॥

बहुत ही सुन्दर श्लोक है। श्रीभगवान् को क्या चढ़ाया जा रहा है? कौन से आसन दिए जा रहे हैं? मन से आसन दिया जा रहा है, कल्पना से दिया जा रहा है। हिम जल लाया जा रहा है, उससे स्नान कराया जा रहा है। हमारे घर में प्रतिदिन हिमालय का जल उपलब्ध नहीं होगा किन्तु मन से उसे उत्पन्न किया जा सकता है। श्रीभगवान् को चढ़ाने के लिए प्रतिदिन अनेक रत्न, हीरे, जवाहारात आदि नहीं ला सकते। प्रतिदिन स्वर्ण के थाल में श्रीभगवान् को मन से भोग लगाया जा सकता है। जब हम इस प्रकार की भावना से कुछ अर्पित करते हैं तो श्रीभगवान् उसे भी ग्रहण करते हैं। श्रीभगवान् हमारी थाली से भोजन नहीं करते हैं अपितु हम भावपूर्ण होकर उन्हें जो अर्पित करते हैं, वे उसे ग्रहण करते हैं। हमें भोग अर्पित करने के लिए सुविधा हो, इसलिए सामने थाली रखी जाती है। अब तो हमारा भोग लगाना भी एक औपचारिकता हो गया है। श्रीभगवान् के सम्मुख थाली रखी, जल घुमाया, घण्टी हिलाई और थाली हटा ली। श्रीभगवान् ने भोजन आरम्भ भी नहीं किया और थाली सामने से हट जाती है। छोटे से लड्डू गोपाल को भोजन कराने में शीघ्रता कैसी? हम छोटे बच्चों को भोजन करने में, दुग्ध-पान कराने में जल्दबाजी करते हैं क्या? माँ को छोटे बालक को भोजन कराने, दुग्ध-पान कराने के लिए बहुत समय देना पड़ता है। हमारे घर में तो उससे भी छोटा विग्रह है। उसे भोजन कराना है तो शीघ्रता कैसी? जब यह भाव मन में आए, तब श्रीभगवान् का अस्तित्व समझ में आएगा। श्रीभगवान् खाते हैं। बहुत सुन्दर भजन है-

कौन कहते हैं भगवान खाते नहीं,
लोग शबरी के जैसे खिलाते नहीं।
कौन कहते हैं भगवान आते नहीं,
हम मीरा के जैसे बुलाते नहीं।।

श्रीभगवान् आते हैं किन्तु बुलाने वाला भी वैसा ही होना चाहिए। वे प्रह्लाद के लिए आए, ध्रुव के लिए आए, शबरी के लिए आए। बुलाने वाले भी ध्रुव, प्रहलाद, शबरी जैसे होने चाहिए। आप सोचेंगे कि फिर हमारे लिए क्यों नहीं आते? क्योंकि हम वैसी भावना नहीं रखते। हम श्रीभगवान् को उस श्रद्धा से नहीं बुलाते है। हमारी दृष्टि का दोष दूर हो जाए तो सम्भव है।

इसीलिए यहाँ ज्ञान और विज्ञान दोनों सिखाया जा रहा है। **थाली का भोजन खाना भौतिक है और सूक्ष्म रूप से भोजन करना अधिभौतिक है।** विज्ञान भौतिक होता है, ज्ञान अधिभौतिक होता है। यह जानकर हम संसार से मुक्त हो जाएँगे। आठवाँ अध्याय समझने के बाद यह गुह्यतम ज्ञान समझना सरल हो जाएगा। पहले सरल ज्ञान बताया गया तथा उसके उपरान्त कठिन। यदि श्रीभगवान् सीधे अमृत दे देते तो वह आनन्द नहीं आता। इसलिए प्रतीक्षा कराई गई।

भूख लगने के बाद हमें भोजन में जो रस आता है, उसका जो आनन्द होता है, वह अलग ही होता है। इस तरह आठवें अध्याय में तृष्णा जगाई गई और फिर श्रीभगवान् ने अपने प्रिय अर्जुन के समक्ष यह ज्ञान प्रस्तुत किया।

9.2

राजविद्या राजगुह्यं(म्), पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं(न्) धर्म्यं(म्), सुसुखं(ङ्) कर्तुमव्ययम्।।9.2।।

यह (विज्ञान सहित ज्ञान अर्थात् समग्र रूप) सम्पूर्ण विद्याओं का राजा (और) सम्पूर्ण गोपनीयों का राजा है। यह अति पवित्र (तथा) अतिश्रेष्ठ है (और) इसका फल भी प्रत्यक्ष है। यह धर्ममय है, अविनाशी है (और) करने में बहुत सुगम है अर्थात् इसको प्राप्त करना बहुत सुगम है।

विवेचन- श्रीभगवान् स्वयं इस अध्याय की व्याख्या कर रहे हैं। यह अध्याय ज्ञान और विज्ञान का राजा है। सभी गुप्त रहस्यों का रहस्य है तथा प्रत्यक्ष फल देने वाला है। यह सर्वाधिक सुन्दर, सर्वाधिक उत्तम, सर्वाधिक पवित्र, सनातन और अविनाशी है। यह कल भी वैसा ही था, आज भी वैसा ही है और कल भी वैसा ही रहेगा। इसे सनातन कहते हैं। हम अपने धर्म को सनातन धर्म कहते हैं क्योंकि यह ज्ञान कल भी वैसा ही था, इसीलिए साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व कही गई श्रीमद्भगवद्गीता आज भी उतनी ही प्रामाणिक तथा सार्थक है,

क्योंकि यह सनातन है। विज्ञान में परिवर्तन होता जाता है। पहले डायल वाले फोन होते थे। ट्रङ्क कॉल लगाना पड़ता था। कुछ वर्ष पूर्व की-पैड वाला मोबाइल फोन था, आज टचस्क्रीन वाला आई-फोन है। विज्ञान परिवर्तनशील होता है। उसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। ज्ञान सदा के लिए होता है। न उसका नाश होता है और न ही परिवर्तन होता है। ऐसा अद्भुत् सनातन ज्ञान श्रीभगवान् दे रहे हैं। इस ज्ञान की एक शर्त है। यदि वह शर्त नहीं मानेंगे तो यह ज्ञान हमें प्राप्त नहीं होगा। इसकी यही शर्त है कि मन में श्रद्धा का भाव होना चाहिए। हम इतने अहङ्कारी हो गए हैं कि हम समझते हैं कि "जो मैं जानता हूँ, वही सही है। मेरे पूर्वजों ने, सन्त महात्माओं ने जो जाना, उन पर मैं क्यों भरोसा करूँ? मैं सर्वज्ञ हूँ, मैं सब जाँचूँगा, मैं सब परखूँगा, तभी विश्वास करूँगा। क्या हम अपनी माँ से यह प्रश्न करते हैं कि "मैं इस बात पर कैसे विश्वास कर लूँ कि यही मेरे पिता हैं? मैं तो डीएनए टेस्ट करवाऊँगा, तभी विश्वास करूँगा।" हम ऐसा नहीं करते। हम अपनी माँ पर भरोसा करते हैं। महाराष्ट्र में हम सन्त ज्ञानेश्वर महाराज को माऊली कहते हैं। माऊली का अर्थ माँ है। जो माँ ने कह दिया, उस पर विश्वास करते हैं। श्रद्धा का भाव ही इसकी पहली शर्त है। हमने जो कुछ भी जाना है, वह पुस्तकें पढ़कर ही जाना है। ये पुस्तकें भी उन्होंने ही लिखी जिन्होंने कई प्रयोग किए। हजारों प्रयोग करने के बाद जो एक प्रयोग सफल हुआ, वह पुस्तक में लिखा गया, उसी को हम मानते हैं। हजारों वर्षों से चल रही परम्परा से जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उस ज्ञान को हम नहीं मानते क्योंकि उस ज्ञान के प्रति हमारे मन में श्रद्धा नहीं है।

9.3

अश्रद्दधानाः(फ्) पुरुषा, धर्मस्यास्य परन्तप।
अप्राप्य मां(न्) निवर्तन्ते, मृत्युसंसारवर्त्मनि।।9.3।।

हे परंतप! इस धर्म की महिमा पर श्रद्धा न रखने वाले मनुष्य मुझे प्राप्त न होकर मृत्युरूप संसार के मार्ग में लौटते रहते हैं अर्थात् बार-बार जन्मते-मरते रहते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "जिसमें श्रद्धा नहीं, उसके लिए मेरी प्राप्ति का और कोई मार्ग नहीं, कोई सम्भावना नहीं। अश्रद्ध व्यक्ति को पता ही नहीं कि इस प्रकार का ज्ञान इतने वर्षों से परम्परा से निकाला गया निचोड़ है। अपौरुषेय का अर्थ है कि ये किसी एक ने नहीं लिखे। जैसे-जैसे मनीषी, जैसे-जैसे बौद्धिक व्यक्ति आगे बढ़ते गए, उन मनीषियों, बुद्ध-सन्तों ने जो बात समझी, अनुभव किया, जो ज्ञान उन्हें ऐसे बोधि वृक्ष के नीचे प्राप्त हुआ, ऐसे एक बुद्ध नहीं, अनेक बुद्ध होते गए। हमारे यहाँ बुद्धों की परम्परा रही है। इस परम्परा ने अपने-अपने ज्ञान से जो जाना, वह लिखते गये। महर्षि वेदव्यास जी ने उनको सङ्कलित किया, समेटा, उसके विभाग बनाए तथा चारों वेदों में उसकी रचना की। यह जो ज्ञान की गङ्गा बही, उस पर विश्वास नहीं करेंगे तो हमारी गति वैसी ही होगी जैसे हमारे घर में ही भूमि के नीचे बहुत बड़ा धन छुपा हुआ है किन्तु हमें ज्ञात नहीं है और हम पूरी दुनिया में भीख माँगते घूम रहे हैं।

जिस प्रकार मेंढक को कीचड़ में ही आनन्द आता है। भ्रमर उड़ता हुआ आता है और कीचड़ से निकले कमल के पुष्प पर बैठकर पराग के रस का सेवन करते हुए उसका आनन्द लेता है। वह ऊपर से उड़ कर आया और उसने देखा कि कहाँ बैठना चाहिए और सही स्थान पर बैठा। श्रीभगवान् हमें समझा रहे हैं कि सही स्थान कहाँ है, किन्तु हम अपने अहङ्कार में ऐसे डूबे हुए हैं कि दूर से मृग, जल देखकर मुँह में भरे अमृत को छोडकर उस मृग-जल की ओर दौड़ रहे हैं। मन में श्रद्धा का भाव हो तो ही इस ज्ञान को समझा जा सकता है। श्रद्धा ही इसकी पहली शर्त है।

9.4

मया ततमिदं(म्) सर्वं(ञ्), जगदव्यक्तमूर्तिना।
मत्स्थानि सर्वभूतानि, न चाहं(न्) तेष्ववस्थितः।।9.4।।

यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूप से व्याप्त है। सम्पूर्ण प्राणी मुझ में स्थित हैं; परन्तु मैं उनमें स्थित नहीं हूँ तथा (वे) प्राणी (भी) मुझ में स्थित नहीं हैं - मेरे इस ईश्वर-सम्बन्धी योग (सामर्थ्य) को देख ! सम्पूर्ण प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और प्राणियों का धारण, भरण-पोषण करने वाला मेरा स्वरूप उन प्राणियों में स्थित नहीं है। (9.4-9.5)

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "मुझ निराकार परमात्मा से यह सम्पूर्ण जगत परिपूर्ण है। सभी भूत (प्राणी) मेरे अन्तर्गत सङ्कल्प के आधार में स्थित हैं, परन्तु मैं वास्तव में उनमें लिप्त नहीं हूँ।" जिस प्रकार एक बीज में पूर्ण वृक्ष होता है किन्तु हमें दिखाई नहीं देता। वह सूक्ष्म रूप से वृक्ष के अन्दर है। जब आप उसे भूमि में बोकर उसका सिञ्चन करेंगे, तब वह वृक्ष बाहर आयेगा। उसके लिए श्रद्धा के साथ प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। यदि कोई श्रद्धा नहीं रखेगा और उस बीज को नहीं सींचेगा तो उसे वृक्ष प्राप्त नहीं होगा। हमें यह विश्वास रखना पड़ता है कि उस बीज में वृक्ष है। श्रद्धा रखनी पड़ती है और परिश्रम करते रहना पड़ता है।

स्वर्ण से अलङ्कार बनेगा किन्तु उसके लिए स्वर्ण को स्वर्णकार के पास ले जाना पड़ेगा। स्वर्णकार उसे तपा कर आकार देगा, तभी अलङ्कार बनेगा।

समुद्र के जल में लहरें उठती हैं। हम उन्हें लहरें कहते हैं किन्तु वह भी समुद्र ही है। जल की सतह पर बुलबुला बनता है तो हम उसे बुलबुला कहते हैं किन्तु वह भी तो जल ही है। बुलबुला जल है किन्तु बुलबुले में जल नहीं है। जिसे यह बात समझ में आ जाएगी, वह इस श्लोक को समझ पाएगा।

यह बात समझाने के लिए श्रीभगवान् ने अनेक स्थानों पर श्लोक कहे हैं।

9.5

न च मत्स्थानि भूतानि, पश्य मे योगमैश्वरम्।
भूतभृन्न च भूतस्थो, ममात्मा भूतभावनः।।9.5।।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "वे सारे प्राणीमात्र मुझसे अलग हो गये परन्तु यह मेरी योगशक्ति है कि जिन भूतों को मैंने उत्पन्न किया, उन्हें धारण किया, उनका पोषण किया परन्तु वास्तविक रूप से मैं उन भूतों में स्थित नहीं हूँ।"

यदि किसी पर्वत पर खड़े होकर आपने राम-राम पुकारा तो आपको उसकी प्रतिध्वनि सुनाई देगी। मार्ग पर चलते समय आप अपनी जो परछाई देखते हैं, वह परछाई आपकी ही है परन्तु उसमें आप नहीं हैं। यह बात समझने की है कि वह परछाई आपके कारण है परन्तु वह परछाई आप नहीं हैं।

इसका बहुत सुन्दर वर्णन ज्ञानेश्वरी में देखने को मिलेगा। सूर्य की किरणें सूर्य से निकलती हैं किन्तु सूर्य की किरणें सूर्य नहीं हैं। इसी प्रकार हमारे अन्दर जो आत्मा है, वह श्रीभगवान् से प्राप्त है किन्तु वह श्रीभगवान् नहीं है। इसे जानना आवश्यक है।

मिट्टी का मटका अपने आप नहीं बनता। मिट्टी के मटके से अङ्कुर भी नहीं निकलता। मटका मिट्टी का होता है किन्तु हम मटके को मिट्टी नहीं कहते। श्रीभगवान् कहते हैं कि सारी सृष्टि का सृजन मैंने ही किया है किन्तु मैं उसमें नहीं हूँ।

9.6

यथाकाशस्थितो नित्यं(वँ), वायुः(स्) सर्वत्रगो महान्।
तथा सर्वाणि भूतानि, मत्स्थानीत्युपधारय॥9.6॥

जैसे सब जगह विचरने वाली महान् वायु नित्य ही आकाश में स्थित रहती है, ऐसे ही सम्पूर्ण प्राणी मुझमें ही स्थित रहते हैं - ऐसा तुम मान लो।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "जिस प्रकार सर्वत्र विचरण करने वाली वायु आकाश में ही स्थित है, उसी प्रकार मेरे सङ्कल्प से उत्पन्न समस्त भूतमात्र मुझमें ही स्थित हैं।" वायु आकाश में स्थित होती है किन्तु हमें न तो वायु दिखती है और न ही आकाश। फिर भी हम अनुभव कर सकते हैं। इसी प्रकार उस परमात्मा के अस्तित्व का अनुभव हमें प्रतिदिन, प्रतिक्षण होता है। हम प्रातःकाल उठते ही जब प्रथम श्वास लेते हैं, तभी हमें अनुभव होता है कि हम जीवित हैं। हमारे हाथ स्वयं जुड़ जाने चाहिए कि "श्रीभगवान्! यह आपकी

कृपा है कि मैं अभी जीवित हूँ।" हमारी श्वास परमात्मा ही चलाते हैं। जैसे ही वे अन्दर से निकल जाते हैं, हमारी श्वास रुक जाती है।

जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में समस्त तृण सूख जाते हैं। वर्षा ऋतु आते ही पुनः हरियाली आ जाती है। उसी प्रकार सृष्टि का निर्माण और फिर प्रलय होना, यह निरन्तर चलने वाली घटना कैसे घट रही है? इसके विषय में आगे बताया गया है।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "कल्प के अन्त में प्रकृति मुझमें विलीन हो जाती है और कल्प के आदि में वह फिर मुझसे ही उठती है। हे अर्जुन! वैसा ही अस्तित्व समझना।"

हम स्वर्ण के आभूषण स्वर्णकार के पास ले जाते हैं, वह उन आभूषणों को पिघला कर फिर से नये आभूषण बना देता है। पानी की लहरें पानी में से उठती हैं फिर पानी में गिर जाती हैं, फिर से उठती हैं। उठने और फिर अन्तर्ध्यान होने का यह क्रम निरन्तर चलता रहता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि "हे अर्जुन! वैसे ही तू मेरा अस्तित्त्व समझ।" जिस प्रकार निद्रा से उठते ही सारे स्वप्न लुप्त हो जाते हैं, वैसे ही मैं सृष्टि की रचना करता रहता हूँ, फिर सृष्टि को नष्ट करता हूँ और पुनः उसकी रचना करता हूँ। यह चक्र निरन्तर चलता रहता है और यह मेरे कारण होता रहता है।"

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "अपनी माया का अङ्गीकार कर प्रकृति के स्वाधीन होने से वास्तविक पराधीन इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय को मैं उनके कर्मानुसार बार-बार उत्पन्न करता हूँ और जन्म देता हूँ।" जिस प्रकार ग्रहणी दूध में हल्का सा जामन अर्थात् थोड़ा-सा दही मिला देती है। दूध में दही को जमाना एक बहुत ही अद्भुत उदाहरण है। फिर दूध, दूध नहीं रहता, वह एक नए रूप में प्रकट हो जाता है। वह दही है। बीज को पानी का अंश मात्र मिल जाने से वह अङ्कुरित होकर पौधा बनता है, फिर वृक्ष का रूप धारण करता है। यह सब प्रकृति की निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। हम प्रायः कहते हैं कि यह शहर, यह नगरी राजा ने बनवाई है। क्या राजा वास्तव में नगर बनाता है? आप कहते हैं कि आपने घर बनाया है। क्या वास्तव में घर आप बनाते हैं? वास्तव में हम घर बनाने की कल्पना करते हैं और उस घर के निर्माण के लिए लगने वाली वस्तुओं को उपलब्ध करवाते हैं, किन्तु ईंट रखने वाला कोई होता है, सीमेन्ट लगाने वाला कोई होता है, तब जाकर घर बनता है। हमारी कल्पना होती है कि हम घर कैसा बनाएँ? राजा की कल्पना होती है कि कैसी नगरी बनाएँ? परन्तु उसको बनाने वाले अनेक श्रमिक ही होते हैं।

उसी प्रकार जब श्रीभगवान् प्रकृति को बनाते हैं तब उनको कोई श्रम नहीं करना होता। हम निद्रा में दौड़ रहे होते हैं और हाँफ रहे होते हैं, परन्तु निद्रा खुल जाने पर हमें ज्ञात होता है कि यह तो स्वप्न था। हम देखते हैं कि हम हाँफ नहीं रहे होते। स्वप्न में हाँफना एक परिकल्पना है और जब वास्तविकता में आ जाते हैं तो हमें पता चलता है कि हम कुछ नहीं कर रहे होते। उसी प्रकार जब श्रीभगवान् सारी सृष्टि रच रहे होते हैं, तब वैसे ही आकाश में चन्द्रमा ऊपर उठने लगता है, समुद्र में लहरें उठने लगती हैं। समुद्र में लहरों को उठाने के लिए चन्द्रमा को कोई श्रम नहीं करना होता है। यह सब कुछ सृष्टि की रचना है, संयोग है। समुद्र में लहरें उठने के लिए

चन्द्रमा कारण बन जाते हैं। लौह-चुम्बक को हाथ में पकड़ कर हम जब लोहे की वस्तुओं के निकट ले जाते हैं तो वह उनको अपनी ओर खींचता है। यहाँ लौह-चुम्बक को कोई श्रम नहीं करना होता है। इसी प्रकार श्रीभगवान् भी बिना किसी कष्ट के हँसते-हँसते सृष्टि की रचना करते रहते हैं।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि "हे अर्जुन! कर्मों में आसक्ति-रहित होने के कारण, उदासीन भाव होने के कारण वे मुझे कभी बाँध नहीं सकते। जैसे दीपक घर को प्रकाशमान कर देता है परन्तु उस घर में पुण्य हो रहा है या पाप, इससे उसे कोई सरोकार नहीं रहता। इसी प्रकार सृष्टि में जो भी घट रहा है, उसमें मैं लिप्त नहीं हूँ, अपितु मैं निर्लिप्त रहता हूँ।"

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् कह रहे हैं कि "हे अर्जुन! यह प्रकृति मेरी ही अध्यक्षता में चराचर सहित सम्पूर्ण जगत की रचना करती है। मेरे ही कारण इस सृष्टि का चक्र चलता रहता है।"

हम टाटा ब्रान्ड का नमक लाकर कहते हैं कि हमने टाटा का नमक लिया है। यहाँ श्री रतन टाटा को नमक बनाने में कोई कष्ट या फिर कोई परिश्रम नहीं करना होता है। श्री रतन टाटा ने नमक बनाने की फैक्ट्री लगवाई है। वहाँ श्री रतन टाटा की तकनीकी टीम नमक बनाती हैं किन्तु उस पर टाटा का नाम होता है।

हम बजाज स्कूटर ले आते हैं। उस पर बजाज का नाम होता है जबकि बजाज कंपनी के मालिक को स्कूटर बनाने का कोई कष्ट, परिश्रम नहीं होता। सत्य यह है कि उन्होंने बजाज स्कूटर बनाने की योजना बनाई है।

पूज्य गोविन्ददेव गिरि जी महाराज के कारण गीता परिवार चलता है। उन्होंने ऐसी सुदृढ़ योजना बनाई कि अनेक गीता सेवी ही गीता परिवार चलाते हैं। श्रीभगवान् इस चराचर सृष्टि के रचयिता हैं, इसके अध्यक्ष हैं। उनके मन में योजना आई और सृष्टि की रचना होती चली गई। यह बात जिसको समझ में आ गई, उसे इस चराचर सृष्टि का सत्य पता चल जाएगा। जैसे ही चराचर सृष्टि का सत्य पता चल जाएगा, वैसे ही उसके मन में सत्य की अनुभूति होने लगेगी। यह सत्य की अनुभूति कैसे होती है? क्या सत्य है? यह क्या गुह्य शास्त्र है? सब ज्ञात हो जाएगा। जब यह सब कुछ ज्ञात हो जाएगा, तब नवम् अध्याय को समझना सरल हो जाएगा। यह नवम् अध्याय राजविद्या है।

इसी के साथ आज का विवेचन सत्र पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||